अतीत के खंडहर और भविष्य के हवा महल से निकलने की ज़रुरत

अभी के दौर में आर्थिक शब्दावली कुछ ज्यादा ही चलन में है, लिहाजा जीवन मूल्यों को भी आयात-निर्यात की नजर से देखा जाने लगा है। लेकिन भारत ने अपने मूल्य न तो अभी तक किसी पर थोपे हैं, न ही उनका निर्यात किया है। इनमें से जो भी दुनिया को अपने काम का लगता है, उसे वह ग्रहण करती है, ठीक वैसे ही, जैसे अन्य समाजों से हम ग्रहण करते हैं। जिस दौर में दुनिया अहिंसा को एक भारतीय मूल्य के रूप में अनुकरणीय मानती थी, भारत की धरती पर उस दौर में संसार का सबसे बड़ा साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन अहिंसा के सिद्धांत पर ही संचालित हो रहा था।

राम मनोहर लोहिया ने उस समय आइंस्टाइन से अपनी बातचीत के दौरान अहिंसा को एटॉमिक पॉवर से भी ज्यादा शक्तिशाली और संभावनामय बताया था और उनकी इस प्रस्थापना पर आइंस्टाइन ने हामी भी भरी थी। बाद में अहिंसा का ऐसा ही प्रयोग साउथ अफ्रीका में रंगभेदी व्यवस्था से मुक्ति के लिए दोहराया गया, लिहाजा यह मानना गलत होगा कि अहिंसा पर भारत का कॉपीराइट है। हां, इस महान मूल्य का रिश्ता अगर हमें दोबारा भारत से जोड़ना है तो किसी को हिम्मत करके एक बार फिर अहिंसा के बड़े राजनीतिक प्रयोग के रास्ते पर बढ़ना होगा।

इधर लेखक गिरिराज किशोर के अनुसार दलाई लामा ने ठीक ही कहा है कि अहिंसा का निर्यात हम बहुत कर चुके, अब इसकी सबसे ज्यादा जरूरत हमारे ही देश में है। बुद्ध के समय से हम अहिंसा का निर्यात करते आ रहे हैं। अशोक और गांधी के बाद नेहरू का पंचशील भी यही था। लेकिन हमारे यहां से बुद्ध और गांधी, दोनों ही विदा हो गए तो उनकी मान्यताएं कहां रहनी थीं। दरअसल बात यह है कि गांधी के जाने के बाद देश और राजनीति ने जो रास्ता पकड़ा, वह अहिंसा का नहीं रहा। स्वार्थ इतना बढ़ गया कि दूसरों की सुख-सुविधा के बारे में सोचने की इच्छा ही नहीं रही।

जब यही नहीं है तो अहिंसा का मूल, यानी दूसरों को दुख देना या दूसरों के अधिकार छीनना ही हिंसा है, यह कौन समझेगा। दूसरों के अधिकार छीनना हमें ही दुख पहुंचाएगा, जब तक हम यह नहीं समझेंगे तब तक न्याय नहीं कर सकते। गांधी ने हिंद स्वराज में ग्राम स्वतंत्रता की बात की थी, और कहा था कि बगैर उसके समानता नहीं आ सकती। लेकिन हुआ क्या? नेहरू ने गांधी को लिखा कि अंधियारे गांव देश को क्या प्रकाश देंगे? तब से हमारे देश में नेहरू की नीतियां चल रही हैं, गांधी की नहीं।

यही गलत हुआ। आज दुनिया के अनेक देशों में स्वायत्तता निचली इकाइयों तक पहुंची हुई है, लेकिन हमारे देश में इसका उलटा है। जब तक हम इस बारे में मूल रूप से सोचना शुरू नहीं करेंगे, तब तक देश में हिंसा होती रहेगी। हमें दूसरों के दुख के बारे में सोचना होगा। दलाई लामा यह कह सकते हैं क्योंकि वे वैसा ही जीवन जी रहे हैं। हमारे पास आयात करने के लिए तो बहुत कुछ है, लेकिन निर्यात करने के लिए अहिंसा के अलावा कुछ नहीं। लेकिन जो निर्यात करते हैं, उसे अपने लिए भी तो उपयोगी मानें।

जी हां, कुछ इसी तरह राजकुमार सिद्धार्थ अपने महल से निकले थे खुशी की तलाश में और रास्ते में

उन्होंने बूढ़े, बीमार और मुर्दे को देखा। ये दुख के ही रूप हैं। गम कुछ इसी तरह से राजकुमार सिद्धार्थ की राह में खड़े थे। फिर क्या था ? उन्होंने महल और रथ को छोड़कर दुख दूर करने का उपाय ढूंढने निकल पड़े। महात्मा बुद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी के दुख को देखकर दुखी होने से अच्छा है, उसके दुख को दूर करने के लिए उसे तैयार करना।

दुख मन में होता है और कष्ट शरीर में। महात्मा बुद्ध का यह यूनिवर्सल विजन है कि सारे संसार में सबका दुख सदा-सदा के लिए कैसे दूर हो ? निराला की कविता की एक लाइन है- 'दुख ही जीवन की कथा रही।' यह सच है कि दुख ही जीवन की कथा और परेशानी है। मगर इस परेशानी का अंत कैसे होगा ? यही शिक्षा महात्मा बुद्ध ने दी है। राजकुमार सिद्धार्थ रथ पर सवार होकर महल से निकले, रास्ते में बूढ़े को देखा और झटका लगा कि वह भी बूढ़े होंगे। फिर उन्होंने बीमार को देखा, फिर उन्हें झटका लगा, उन्हें लगा कि वह भी बीमार पड़ेंगे। फिर उन्होंने मुर्दे को देखा और वे उन्हें जोर से झटका लगा कि वह भी मरेंगे। उन्होंने दुख को देखा और दुख के झटके से उनकी आंखें खुल गईं। दुख ने उनको जगा दिया।

इंसान चलते-फिरते, बोलते, काम करते हुए भी एक गहरी नींद में डूबा रहता है। दुख का पहाड़ इंसान को नींद से जगा देता है। दुख जगाता है। यही दुख का प्रभाव है। यही उसकी प्रासंगिकता भी है। हर दुख और पीड़ा एक संदेश देती है। जीवन जीने का संदेश। हर दुख एक चिट्ठी है। हर पीड़ा एक संदेश है। मगर हमारी आंखों पर अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है, इसलिए उस संदेश को हम पढ़ नहीं पाते हैं। हम न खुद को जानते हैं और न भविष्य को। हम दुख को भोगते हैं। खुद का कोसते हैं। दूसरों को दोष देते हैं। यहां तक कि भगवान को भी दोष देते हैं। गीत गाने लगते हैं –

भगवान वो घड़ी जरा इंसान बन के देख, धरती पे चार दिन कभी मेहमान बन के देख।' हिंदी फिल्मों के मंदिर में भगवान को दोष देते हुए कई सीन आपने देखे होंगे और ऐसे सीन आगे भी दिखाए जाएंगे। मगर दुख से संदेश ग्रहण करने का चलन हमारे यहां है ही नहीं। दुख से संदेश तो कोई बुद्धिमान ही लेता है। महात्मा बुद्ध का एक मूल सवाल है। जीवन का सत्य क्या है ? यह प्रश्न हमारी पीड़ा से जुड़ा है। भविष्य को हम जानते नहीं है। अतीत पर या तो हम गर्व करते हैं या उसे याद करके पछताते हैं। भविष्य की चिंता में डूबे रहते हैं। दोनों दुखदायी है।

महात्मा बुद्ध ने वर्तमान का सदुपयोग करने की शिक्षा दी है। बुद्ध ने अतीत के खंडहरों और भविष्य के हवा महल से निकाल कर मनुष्य को वर्तमान में खड़ा रहने की शिक्षा दी है। बौद्ध दर्शन की रेल दया और बुद्धि की पटरी पर दौड़ती है। दया माने सबके लिए कल्याण की भावना। बिहार के बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे महात्मा बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई। उनके ज्ञान की रोशनी पूरी दुनिया में फैली। चीन की कहावत है- बांस के जंगल में बैठो और निश्चिंत होकर चाय पीओ। जैसे कि चीन के प्राचीन साधु-संत किया करते थे। यानी कि जीवन की परेशानियों के बीच शांत होकर बैठना। यह ताओवाद है। जापान में बुद्धिज्म की एक शाखा है जिसका मतलब है शांति, स्थिरता और निश्छलता। भगवान बुद्ध की प्रतिमा देखकर इसी का अहसास होता है। दुख से छुटकारा पाना है, तो बुद्धं शरणं गच्छामि।

अंत में राहत इंदौरी साहब के ये मुक़म्मल शेर मुलाहिज़ा फरमाइए –

ज़िंदगी को ज़ख्म की लज़्ज़त से मत महरूम कर
रास्ते के पत्थरों से खैरियत मालूम कर

मत सिखा लहज़े को अपने बर्छियों के पैंतरे
ज़िंदा रहना है तो लहज़े को ज़रा मासूम कर
————————————————————
प्राध्यापक,हिन्दी विभाग,शासकीय दिग्विजय
पीजी,स्वशासी महाविद्यालय, राजनांदगांव

.